International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
December- 2017, Volume-4, Issue-6
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

साहित्येतिहास का स्वरूप

डॉ0 देवेन्द्र सिंह

व्याख्याता हिन्दी

महारानी श्री जया राजकीय महाविघालय , भरतपुर राजस्थान

हमारे सामने प्रष्न यह है कि साहित्य का ऐसा सर्वांगापूर्ण स्वरूप क्या हो सकता है जिससे साहित्येतिहास के सभी विद्वान न सही पर अधिकांष विद्वान सहमत हो सकें। स्वरूप निर्धारण के दो तरीके हो सकते हैं। पहला तरीका यह कि अब तक लिखे श्रेष्ठ साहित्येतिहासों के स्वरूप का विवेचन कर एक सर्वाधिक परिपूर्ण स्वरूप की रूपरेखा बनाने की कोषिष की जाए। इस प्रक्रिया की प्रमुख बाधा यह है कि साहित्येतिहास ग्रंथों का अध्ययन करने पर विद्वानों ने अधिकांष को अपूर्ण ही पाया हैं; जैसा कि हम पूर्व में देख ही चुके हैं। दूसरा तरीका यह कि साहित्येतिहास के प्रमुख विचारकों के विचारों का विवेचन करने के पष्चात एक सर्व समावेषी सुगठित रूपरेखा निर्धारित की जाए। किन्तु यह महत्त्वपूर्ण कार्य साहित्य इतिहास के किसी अधिकारी विद्वान के द्वारा सम्पन्न होना है। एक शोधकर्त्ता के नाते हम यहाँ पर केवल साहित्येतिहास के अधिकारी विद्वानों के एतद् सम्बन्धी विचारों का विहंगावलोकन करेंगे।

(i) हिन्दी साहित्येतिहासकारों की दृष्टि में

साहित्येतिहास के अर्थ और स्वरूप पर विचार करने वाले विद्वानों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहला वर्ग उन साहित्येतिहासकारों का है जिन्होंने स्वयं साहित्येतिहास–लेखन किया है तथा साहित्येतिहास की अपनी अवधारणा को भी स्पष्ट किया है। दूसरे वर्ग में वे विचारक आते हैं जिन्होंने व्यवहारिक रूप में साहित्येतिहास–लेखन नहीं किया है लेकिन साहित्येतिहास दर्षन पर अपना विवेचन प्रस्तुत किया है। कुछ विद्वानों ने साहित्य के इतिहास का अर्थ बताने का प्रयास किया है तो कुछ ने साहित्य के इतिहास से अपनी अपेक्षाओं को अभिव्यक्त तथा उन दोषों से बचने की सलाह दी है जिनकी वजह से कुछ विद्वान यह कहते हैं कि साहित्य का इतिहास लिखना सम्भव ही नहीं हैं अथवा उसकी आवष्यकता ही नहीं है।

हिन्दी साहित्येतिहासकारों में सर्वप्रथम **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने ही साहित्य के इतिहास को सुनिष्चित और स्पष्ट रूप से परिभाषित किया है। उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास की

Copyright@ijesrr.org

प्रस्तावना में स्पष्ट किया है "जबकि प्रत्येक देष का साहित्य में वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है।" स्पष्ट है कि **आचार्य शुक्ल** साहित्य परिवर्तन के मूल में परिवेष को स्वीकार करते हैं। जहाँ मिश्रबंधु साहित्येतिहास के अध्ययन से पूर्व साहित्य के अध्ययन को आवष्यक मानते हैं वहीं **रामषंकर शुक्ल रसाल** 'साहित्य के अध्ययन से पूर्व साहित्येतिहास अध्ययन को अनवार्य' मानते हैं। वे अपने इतिहास ग्रन्थ में **साहित्य का इतिहास** शीर्षक के अन्तर्गत पहली बार सर्वाधिक विस्तार से विचार करने के बाद लिखते हैं कि "निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि साहित्य के इतिहास से हमें साहित्य का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाना चाहिए। उससे सम्बन्ध रखने वाले समस्त विषयों का यथाक्रम परिवर्तनषील विकास भी हमें अवगत हो जाना चाहिए, इसके साथ ही साथ भाषा और उसकी शैलियों का ज्ञान तथा उसमें समय≤ पर होने वाले परिवर्तनों आदि का प्रस्फुटन होना भी प्रकट हो जाना चाहिए।" साहित्य का सम्पूर्ण परिचय अभीष्ट हैं। साहित्येतिहास के क्षेत्र में आचार्य शुक्ल की ऐतिहासिक अवधारणाओं को चुनौती देने में डॉ॰ रसाल सफल रहे हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार "साहित्य का इतिहास पुस्तकों, उनके लेखकों और कवियों के उद्भव और विकास की कहानी नहीं है। वह वस्तुतः अनादि काल प्रवाह में निरन्तर प्रवहमान जीवित मानव समाज की ही विकास कथा है।" वे मनुष्य और उसकी चेतना के पक्षपाती हैं। इतिहास में भी उनको वही खोज अपेक्षित है। **डॉ॰ रामकुमार वर्मा** का मानना है कि "साहित्य का इतिहास आलोचनात्मक शैली से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।" लीक से हटकर साहित्येतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने के लिए **डॉ॰ गणपति चन्द्रगुप्त** ने साहित्येतिहास की विकासवादी व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार "साहित्येतिहास की विकासवादी व्याख्या के लिए उन सभी तथ्यों पर विचार करना आवष्यक है जो साहित्यकार के व्यक्तित्व एवं उससे सम्बन्धित पूर्व परम्परा, युगीन वातावरण, द्वन्द्व के स्रोत, अभीष्ट लक्ष्य आदि पर प्रकाष डालते हैं।"**डॉ॰ गुप्त** साहित्य के इतिहास को 'सभ्यता और संस्कृति के इतिहास पर आधारित' होते हुए भी उसे **पूरक** मानते हैं।" **डॉ॰ रामखिलावन पांडेय** ने **'हिन्दी साहित्य का नया इतिहास'** लिखकर अपनी विषिष्ट पहचान बनाई है। वे ऐसे "साहित्यिक इतिहास के पक्षपाती हैं जो साहित्य के कलात्मक विकास की दृष्टि से लिखा गया हो।"

इस सम्बन्ध में उनका मानना है कि "कलात्मक चेतना एवं सौदर्य भावना की दृष्टि से लिखा गया हिन्दी साहित्य का इतिहास कितना भिन्न होगा, इसकी कल्पना केवल इस तथ्य से होगी कि हमारे समस्त मूल्य नव स्वरूप ग्रहण करेंगे।" उनका स्पष्ट मत है कि "साहित्य का इतिहास अभिव्यक्ति की सम्पन्नता का विन्यास भी है।" **डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय** "मात्र तथ्यात्मक सामग्री को साहित्येतिहास नहीं मानते बल्कि साहित्येतिहास को अपने को पहचानने (मानव जाति को) का विषिष्ट एवं स्वतंत्र साधन मानते हैं।' **डॉ. शम्भूनाथ** अपने विद्वतापूर्ण ग्रन्थ **हिन्दी साहित्य की सामाजिक भूमिका** में साहित्येतिहास की समस्याओं पर विचार करते हुए लिखते हैं कि "मानव की विकास प्रक्रिया का ही दूसरा नाम इतिहास है।' तथा 'हिन्दी साहित्य के इतिहास को भारतीय मानस की विविध क्रिया–प्रतिक्रियाओं से सम्बन्ध करके ही देखा जा सकता है।' उन्होंने इसी सिद्धान्त के आधार पर अपने ग्रन्थ में हिन्दी साहित्येतिहास पर गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया हैं। **डॉ. नगेन्द्र** के अनुसार "युग जीवन के परिवेष में साहित्य की विकास परम्परा का निरूपण करना ही साहित्य के इतिहासकार का कर्त्तव्य कर्म है। इसके बिना इतिहास एकांगी और अपूर्ण रहेगा।"

उपर्युक्त सभी विद्वानों ने साहित्येतिहास लेखन जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं उन्हीं के आधार साहित्येतिहास का लेखन भी किया है। यह बात अलग है कि वे अपने मत के आग्रही होने के कारण उन्य मतों को उचित स्थान नहीं दे सके हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पूरक दृष्टि लेकर हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वालों में **डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी** महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास के स्थान पर **साहित्य और संवेदना के विकास** का प्रस्ताव रखा है। अपने ग्रन्थ में इतिहास और विकास के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "इतिहास में बल इतिवृत्त पर होता है, विकास मे इतिवृत्त के उस अंष पर जहाँ दिखाया जाता है कि एक युग अपने पिछले युग से, और एक रचनाकार काल क्रम में अपने पहले के रचनाकार से कहाँ और क्यों भिन्न तथा विषिष्ट है।" साहित्य– विकास की विषयवस्तु को रेखांकित करते हुए बताते हैं कि "भाषा साहित्य और संस्कृति के अन्तरसम्पर्क में हिन्दी क्षेत्र और वहाँ के जन समुदाय की संवेदना कैसे विकसित होती गई है, और साहित्य उसे किस रूप में प्रतिफलित करता है, यह इस समूचे अध्ययन की अंतर्वस्तु हैं।" उनकी दृष्टि में कवि कीर्तन के बजाय कविता कीर्तन महत्त्वपूर्ण है। साहित्येतिहास लेखन के लिए उनकी दृष्टि में **प्रमाणिक और गतिषील** इतिहास विवेक और आलोचना विवेक आवष्यक है जो समकालीन साहित्य की समझ और युगीन संदर्भों से जुड़ने पर ही संभव हैं। प्राचीन

साहित्य के मूल्यांकन के सम्बन्ध में इतिहासकार के दायित्व को समझाते हुए लिखा है कि "इन दोनों युगों (अतीत और वर्तमान) का रिष्ता और क्रिया–प्रतिक्रिया स्पष्ट करते हुए वह रचनाकार के सम्प्रेषण को प्रषस्त करे, और व्यापक परम्परा के अन्तर्गत उसका मूल्यांकन करे, इतिहास की इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए यह भी जरुरी है कि हम युग विषेष की संवेदना को समझें, और उस युग के साहित्य में उसकी साझेदारी का विष्लेषण कर सकें।" उन्हें साहित्य और संवेदना का अलगाव पसन्द नहीं है, "अभी तक के इतिहासों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का इतिवृत्त कथन अलग होता है, और साहित्य धारा का दिग्दर्षन अलग। यहाँ प्रयत्न यह है कि साहित्य और संवेदना को एक साथ देखा–परखा जा सकें।" उनकी दृष्टि में "साहित्य के विकास के साथ–साथ संवेदना के विकास को रेखांकित करना इतिहासकार के कर्म का आवष्यक अंग है।"

उपर्युक्त साहित्येतिहासकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वान भी हैं जिन्होंने साहित्येतिहास पर चिन्तन करते हुए उसके स्वरूप निर्धारण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अभिमत प्रस्तुत किये हैं।

(ii) हिन्दी साहित्येतिहास चिन्तकों की दृष्टि में

हिन्दी में साहित्येतिहास दर्षन को लेकर सर्वप्रथम और सर्वाधिक ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य है **श्री नलिन विलोचन शर्मा** का **साहित्य का इतिहास दर्षन** नामक ग्रंथ। उन्होंने साहित्येतिहास की अपूर्णताओं और संभावित स्वरूप पर गहन विमर्ष प्रस्तुत किया है। वे साहित्येतिहास को **तिथि मूलक सूची पत्र से कुछ अधिक और भिन्न** बनाने के लिए सलाह देते हैं कि साहित्येतिहासकार को "कार्य कारण सम्बन्ध और सातत्य का ज्ञान, सांस्कृतिक परिवेष का कुछ बोध और उस व्यवस्था में यत्किंचित प्रवेष होना ही चाहिए, जिसमें अंषीभूत कलाएँ अंषीभूत सभ्यता से सम्बन्ध रहती है। उसके साधन में स्थिति स्थापकता आवष्यक है।" वे आगे स्थितियों के विष्लेषण में कारणत्व की कठोरता एवं लचीलेपन दोनों से सावधान करते हुए लिखते हैं कि "मनोवैज्ञानिक या समाजषास्त्रीय कारणत्व के बने बनाये सिद्धान्तों का परिणाम केवल यही होता है कि समस्त सुलभ सामग्री कार्यकारण की पहले से ही बनी धारणाओं के अनुरूप तोड़ी–मरोड़ी जाए। किन्तु दूसरी ओर साहित्यिक इतिहासकार के साधन इतने लचीले भी नहीं होने चाहिए कि प्रत्येक नवीन तथ्य के लिए एक सर्वथा भिन्न प्रकार का कारण प्रस्तुत हो जाए।" वे आगे स्पष्ट करते हैं कि "एक लेखक की रचनाओं का समाधान तो उसे प्रभावित करने वाली परम्परा से हो, दूसरे का उसकी व्यक्तिगत कुंठा से, तीसरे का उनके रचना प्रदेष से और चौथे

का युग–प्रवृत्ति से यह उचित नहीं हैं।" साहित्येतिहास लेखन के इन महत्त्वपूर्ण सूत्रो के अलावा वे साहित्येतिहास की समग्रता के हामी हैं। भूमिका में ही दृढ़ता से लिखते हैं कि "(प्रतिज्ञा यह है कि) साहित्येतिहास (भी, अन्य प्रकार के इतिहासों की तरह कुछ विषिष्ट लेखकों और उनकी कृतियों का इतिहास न होकर) युग विषेष के लेखक समूह की कृति समष्टि का इतिहास ही हो सकता है।" उनका मानना है कि 'साहित्यिक इतिहास जरुरी है कि साहित्यिक भी हो और इतिहास भी' तथा उनकी आकांक्षा है कि 'साहित्य का एक कला के रूप में ऐसा इतिहास लिख जाय, जो यथासम्भव सामाजिक इतिहास, लेखकों की जीवनियों या अलग–अलग कृतियों के परिषमन से अलग हो।' इसके अतिरिक्त **नलिन विलोचन शर्मा** गौण कवियों, जन रूचि के विकास साहित्यिक परम्पराओं की खोज एवं लोकवार्त्ता को साहित्य के इतिहास लेखन में स्थान देने का आग्रह करते है। वे **विस्तार और संकोचन** के अतिवादी खतरों की ओर संकेत करते हुए अपेक्षा करते हैं कि "हमें आज ऐसे वैदुष्य की अपेक्षा है, जो साहित्य–कला के रूप में भी तथा हमारी सभ्यता की अभिव्यक्ति के रूप में भी–के अनुषीलन की मुख्य समस्याओं की परिधि में केन्द्रित हो।"

साहित्य के इतिहास दर्षन पर **डॉ॰ आनंद नारायण शर्मा** का शोध कार्य अपनी मौलिक और सारगर्भित स्थापनाओं के दृष्टि से विषेष महत्त्व का अधिकारी है। अपने शोध प्रबंध **हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन** में नलिन विलोचन शर्मा की तरह **साहित्येतिहास की साहित्यिकता** की भरपूर वकालत करते हुए लिखते हैं कि "साहित्य के इतिहास में स्वयं साहित्य का अवमूल्यन होने देना किसी भी स्थिति में वांछनीय नहीं।" साहित्यिक इतिहास लेखन के लिए वे स्पष्ट शब्दों में आगाह करते हैं कि "ऐसा इतिहास साहित्यिक मूल्यों को ही आधार बनाकर लिख जा सकता है। साहित्येत्तर क्षेत्रों से अपनाये गये साँचे यहाँ अधिक उपादेय न होंगे।" **रामषंकर शुक्ल** 'रसाल' की तरह **डॉ॰ शर्मा** भी **कला चेतना** के विकास को भी साहित्येतिहास का अंग मानते हुए लिखते हैं कि "दरअसल, साहित्यिक इतिहास को कला चेतना के विकास का आलेख भी तो होना ही है, अन्यथा वह साहित्य का न होकर सभ्यता का या सामाजिक विचारधारा का इतिहास बन जाएगा।" इसके समर्थन में उनका तर्क है कि "साहित्य केवल विचार नहीं, वह विचारों की अभिव्यक्ति का विषिष्ट प्रकार भी हैं। बल्कि वह अभिव्यक्ति का सौष्ठव ही है, जो किसी भाव या विचार को साहित्य के धरातल तक उन्नीत करता है।" इसी क्रम में वे साहित्य के इतिहास की एक **महत्त्वपूर्ण अपूर्णता** पर अपना मौलिक सुझाव प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "साहित्य जीवन का निष्क्रिय दर्पण नहीं, वह स्वयं एक प्रबल सामाजिक शक्ति है। प्रायः

राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक परिस्थितियों के साहित्य पर पड़ने वाले प्रभावों का आंकलन तो किया जाता है, पर साहित्य के रेसीप्रोकल प्रभावों की उपेक्षा हो जाती हैं।" वे अपनी बात की पुष्टि के लिए भक्तिकाल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं तथा पूछते हैं कि "क्या यह आकस्मिक था कि तुलसी के आविर्भाव के एक सौ वर्ष के अंदर मुगल साम्राज्यवाद को कई कोनों से एक बारगी गंभीर चुनौतियाँ दी गईं?" तमाम विष्लेषण के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना आदि की भाँति साहित्येतिहास को भी **एक विधा के रूप** में ग्रहण करना आवष्यक है। यह एक मिश्रित विधा है, जिसमें शोध, इतिहास, संदर्भण, समीक्षा सबके तत्त्व समाहित हैं। इसे विधा के रूप में स्वीकार न कर पाने के कारण ही यह कभी सामाजिक इतिहास का पर्याय बना दिया जाता है और कभी प्रभाववादी निबन्ध का।" लेकिन वास्तव में "साहित्य का इतिहास न कोरा कविवृत्त संग्रह है और न मात्र सभ्यता के विकास क्रम का आलेख। इसका उद्देष्य सृष्टा और परिवेष के आन्तरिक सम्बन्धों का उद्घाटन है। यह भावात्मक उत्कर्ष के साथ अभिव्यक्ति सौष्ठव के भी क्रमिक विकास का आख्यान है।"

सारांष यह कि **डॉ॰ आनंदनारायण शर्मा मानते** हैं कि साहित्य का संतुलित इतिहास लेखन असंभव नहीं है बषर्ते कि जीवन–विवरण, कृति–आलोचना, विचार–विष्लेषण युग–विवरण आदि पर एकांगी बल न दिया जाये। होना यह चाहिए कि वह एक स्वतंत्र विधा के रूप में हो, उसमें कला चेतना एवं मानव चिंता धारा की विकास यात्रा की द्वन्द्वात्मक अभिव्यक्ति हो, षिक्षित और सामान्य जन की मनोवृत्ति, प्रमुख के साथ गौण रचनाकारों का प्रतिनिधित्व हो, साहित्यिक मूल्यों की महत्ता के साथ उसके सामाजिक प्रभावों का अंकन हो, सृष्टा और परिवेष के सम्बन्धों की व्याख्या हो तथा भावात्मक व अभिव्यक्तिगत सौंदर्य की उचित समीक्षा व प्रस्तुति हो।

प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक **डॉ॰ मैनेजर पांडेय** साहित्येतिहास विरोधी आलोचना पद्धतियों एवं उनके द्वारा साहित्य व साहित्येतिहास के सामाजिक पक्ष की उपेक्षा से बेहद खफा है। अपनी पुस्तक **साहित्य और इतिहास दृष्टि** में साहित्य के इतिहास को व्यापक सामाजिक इतिहास का अंग मानते हुए 'साहित्य के विकासषील स्वरूप की धारणा' को 'साहित्य के इतिहास का आधार' घोषित किया है। उनके मतानुसार "साहित्य के इतिहास लेखन की संभावना साहित्य की अवधारणा पर आधारित हैं। अगर साहित्यिक कृतियों को परस्पर स्वतंत्र और सौन्दर्यबोधी वस्तु मान लिया जाए और साहित्य

परम्परा को ऐसी ही वस्तुओं का समुच्चय मात्र मान लिया जाये तो इतिहास की संभावना ही समाप्त हो जायेगी या (फिर साहित्य का इतिहास केवल सौंदर्यबोध का इतिहास बन जाएगा)।" उनका आरोप है कि साहित्येतिहास विरोधी कला को स्वतंत्र, स्थिर और सौंदर्यबोधी वस्तुओं का समुच्चय मात्र मानकर ही इतिहास को नकारते हैं। पुस्तक की भूमिका में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "इसमें साहित्य के स्वरूप और विकास के बारे में एक ऐसे दृष्टिकोण का समर्थन है जो साहित्य और समाज के विकासषील सम्बन्ध को स्वीकार करता है और इतिहास लेखन में साहित्य की सामाजिकता और साहित्यिकता की एक साथ रक्षा करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार साहित्य का इतिहास समाज के इतिहास से प्रभावित होता है और उसे प्रभावित करता है।" क्योंकि "साहित्य का इतिहास लेखन साहित्य में होने वाले परिवर्तन और निरंतरता के द्वन्द्वात्मक विकासषील सम्बन्ध की व्याख्या से ही संभव होता है।"

साहित्येतिहास सम्बन्धी कुछ समस्याओं पर विचार करने के बाद **डॉ॰ पांडेय साहित्येतिहास के नये स्वरूप की अवधारणा** प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "साहित्य को सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहार के अंग के रूप में एक विषिष्ट रचनात्मक व्यवहार समझना साहित्येतिहास की नई धारणा का आधार है।" 'रचना में निहित ऐतिहासिक यथार्थ की प्रमाणिक व्याख्या' को वे साहित्येतिहास की पहली शर्त मानते हैं क्योंकि 'रचना अपने काल के यथार्थ की जटिल समग्रता का अंग होती है।' अर्थात् साहित्य में विकासषील मानवीय यथार्थ की बहुआयामी अभिव्यक्ति होती हैं। जिसके ऐतिहासिक संदर्भों की पहचान आवष्यक है। वे **रचना कर्म के परिवेष तथा परिस्थितियों के विवेचन** को साहित्येतिहास की दूसरी शर्त मानते है। इसके अलावा **साहित्य संसार की सापेक्ष स्वायत्तता का बोध**, **वस्तु और रूप की परम्परा की प्रकृति का विष्लेषण, नवीनता का उद्‌घाटन, सम्प्रेष्य मूल्यों का आंकलन और उनकी मानवीय सार्थकता की व्याख्या**, **मूल्यवान कृति की पहचान और उसकी रक्षा, रचनाकर्मी कलाकार की चेतना की प्रकृति और क्रियाषीलता की परख, रचनाकार की विष्वदृष्टि तथा कृति से उस विष्व दृष्टि के सम्बन्ध का विवेचन, रचनाकर्म की परम्परा और प्रभाव की मीमांसा तथा इतिहास और आलोचना की सर्जनात्मक एकता को सच्चे साहित्येतिहास के विकास** का आधार मानते हैं इतने विस्तार पूर्वक विवेचन के बाद वे साहित्यतिहासकार की सामर्थ्य के रूप में उसकी **ऐतिहासिक अंतर्दृष्टि, आलोचनात्मक चेतना और कला संवेदना** को साहित्येतिहास लेखन के लिए जरूरी मानते हैं।

'साहित्येतिहास : संरचना और स्वरूप' डॉ॰ सुमन राजे की श्रमसाध्य और विद्वतापूर्ण कृति है जिसने उन्होंने साहित्येतिहास दर्षन को विस्तार से विवेचित किया हैं। साहित्येतिहास के अर्थ के लिए उन्होंने प्रमुख विद्वानों की परिभाषाएँ प्रस्तुत कर उनका निष्कर्ष भी दिया है। उनके अनुसार साहित्येतिहास में **युग विषेष की समूहगत कृतियों का समन्वित अध्ययन**, **सुनिष्चित ऐतिहासिक बोध, राष्ट्रीय एवं भाषागत विषेषताओं का उल्लेख**, **अन्तर्निहित एकता के सूत्र**, **युग तथा प्रवृत्तियों की विकास चेतना**, **समकालीन युग दृष्टि, कार्यकारण सम्बन्ध का निर्धारण एवं सातत्य की व्याख्या**, **परिवेष बोध एवं कलाओं का सम्बन्ध**, **वैज्ञानिक, समाजषास्त्रीय एवं दार्षनिक–बोध का समावेष** एवं **समग्र मानव चेतना का विवेचन** होना आवष्यक है। इन विषेषताओं पर उनकी टिप्पणी है कि "इस दृष्टि से साहित्येतिहास एवं इतिहास समानधर्मी हैं केवल उनमें विषयवस्तु एवं क्षेत्र सम्बन्धी अन्तर है।" इसके आगे वे **भाषा के माध्यम** और **साहित्य की वैयक्तिकता** को मूलभूत अन्तर मानती हैं।

नामवर सिंह हिन्दी साहित्य के प्रखर मार्क्सवादी चिंतक हैं। **इतिहास और आलोचना** पुस्तक में संकलित **इतिहास का नया दृष्टिकोण** नामक लेख में उन्होंने **ऐतिहासिक भौतिकवाद** के आधार पर हिन्दी साहित्येतिहास लेखन एक मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की है। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए **द्वन्द्वात्मक प्रणाली के प्रयोग** करने का प्रस्ताव रखते हुए उसकी विषेषताओं के बारे में लिखते हैं कि **"पहली विषेषता** है – किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या विचार को अन्य वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं और विचारों के अविभाज्य प्रसंग में देखना। **दूसरी विषेषता** है – वस्तुओं, व्यक्तियो, घटनाओं और विचारों को गतिषील, परिवर्तनषील और क्रमबद्ध रूप में देखना। **तीसरी विषेषता** है – विकासक्रम को ऊर्ध्वोन्मुख और अग्रसर रूप में देखना। **चौथी विषेषता** है – वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं और विचारों में असंगति अथवा अन्तर्विरोध को पहचानना।**"** उनका मानना है कि "ऐसी ऐतिहासिक प्रणाली का सही उपयोग भौतिकवादी दृष्टिकोण से ही हो सकता हैं। मनोलोकवादी आदर्षवादी विचारक इसे उक्त ढंग से नहीं देख सकते।" इसके साथ वे कुछ सावधानी रखने की चेतावनी भी देना नहीं भूलते, कहते हैं कि "विज्ञान, दर्षन, संगीत, चित्रकला आदि की भाँति साहित्य के भी अपने नियम हैं इसलिए उन नियमों की जानकारी पहले होनी चाहिए। यदि हम साहित्य की रूप तत्त्व–सम्बन्धी विषेषताएँ नहीं जानते, तो भौतिकवाद के सामान्य सिद्धान्त इस दिषा में कोई सहायता नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त साहित्य तथा उसके नियम अन्य वस्तुओं और विचारों से सम्बद्ध है। इसलिए साहित्य तथा उसके नियमों की जड़े स्वयं साहित्य में ही नहीं हैं, बल्कि उसके बाहर हैं; बाहर का अर्थ है वातावरण, परिस्थिति और समाज।" लेकिन यहाँ भी वे

सावधान करते हैं, "सामाजिक पृष्ठभूमि का उपयोग साहित्यिक समस्याओं को समझने की कुंजी के रूप में होना चाहिए; इससे अधिक जोर देना गलत है।" निबन्ध का समापन करते हुए एक महत्त्वपूर्ण बात लिखते हैं कि "संक्षेप में यही है इतिहास के नये दृष्टिकोण की मोटी रूपरेख। हिन्दी साहित्य क्या, किसी भी साहित्य का इतिहास लिखने के लिए दृष्टिकोण निर्धारित करते समय केवल निर्देषक सूत्र देना ही संभव है। इतिहास लेखक के सामने कदम–कदम पर जो अनेक बारीक सवाल उठते हैं उनका आंकलन यहाँ नहीं हो सकता।"

डॉ॰ नामवर सिंह ने हिन्दी साहित्य के इतिहास की समस्याओं को लेकर अनेक लेख लिखें हैं तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की साहित्येतिहास दृष्टि की परख करते समय भी अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किये हैं। **'हिन्दी साहित्य के इतिहास पर पुनर्विचार'** नामक लेख में लिखते हैं कि 'जिन ग्रंथों का लक्ष्य नवीनतम खोजों और नवीन व्याख्याओं का उपयोग करना भर हो' वे अपने सर्वोत्तम रूप में **इतिहास की सामग्री ही हो सकते हैं, इतिहास नहीं।** क्योंकि "नवीन व्याख्याओं का उपयोग इतिहास नहीं हैं, इतिहास स्वयं एक नई व्याख्या है।" अधिकांष इतिहास ग्रंथों में वर्णित, 'पाठालोचन काल–निर्णय, तथ्य संग्रह, तथ्य चयन, सामग्रियों के वर्गीकरण' आदि समस्याओं को वे **ठेठ इतिहास की समस्या** नहीं मानते। उनके मतानुसार "जहाँ दृष्टि अतीतोन्मुखी हो वहाँ इतिहास नहीं हैं, क्योंकि इतिहास में दृष्टि भविष्योन्मुखी होती है और इतिहास की चिंता का केन्द्र बिंदु ठेठ समसामयिक होता है। इसलिए साहित्य के इतिहास में मुख्य समस्या है समसामयिक साहित्य की समस्या; अन्य युगों की सारी समस्याएँ सहायक हैं, अथवा गौण। इस प्रकार जो समसामयिक साहित्य की समस्याओं से जूझ रहे हैं वे इतिहास न लिखते हुए भी वस्तुतः इतिहास बनाने में योग दे रहे हैं।" **डॉ॰ नामवर सिंह** हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन की निरर्थकता की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं कि "हिन्दी साहित्य के इतिहास का अभी तक जैसा काल विभाजन किया गया है, उसके परिणामों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इन युग विभाजनों से इतिहास के वास्तविक स्वरूप को समझने में बाधा ही पहुँची है।" काल विभाजन के कारण हमें 'इतिहास के खण्ड चित्र प्राप्त होते हैं, इतिहास का अखण्ड प्रवाह नहीं मिलता।' एवं 'इस टूटने की क्रिया में बहुत कुछ छूट भी जाता हैं।' मार्क्स के इतिहास दर्षन को प्रतिमान मानते हैं **डॉ॰ नामवर सिंह** इतिहास के अतिक्रमण को सच्चा इतिहास बताते हैं – "किन्तु इतिहास की एक षिक्षा यह भी है कि वास्तविक इतिहास स्वतः आत्मनिषेध है। जिस इतिहास के बोध से मन स्वयं उस इतिहास का अतिक्रमण कर जाए, सच्चा इतिहास वही है। मार्क्स का इतिहास दर्षन इतिहास से मुक्ति की यही चेतना प्रदान करता है।"

हिन्दी साहित्येतिहासकार साहित्येतिहास चिंतकों के विचारों का विवेचन करने पर हम यह कहने के लिए विवष हैं कि साहित्य का इतिहास अपने **अर्थ, स्वरूप** एवं **संरचना** के मामले में एक विधा है इतिहास और साहित्य, साहित्येतिहास और साहित्यालोचन, कला और विज्ञान, अतीत और वर्तमान, वस्तु और रूप, प्रमुख और गौण कवि, षिष्ट और लोक साहित्य, साहित्य और साहित्येत्तर मूल्य (लोकप्रियता), साहित्य पर प्रभाव और साहित्य के प्रभाव, तथ्यात्मकता एवं रचनात्मकता, सामाजिकता एवं साहित्यकता, भाववाद और भौतिकवाद परम्परा, परिवर्तन (प्रयोग) और प्रगति, रचना, रचनाकार व परिवेष आदि के मध्य द्वन्द्वातमक सम्बन्ध है। इनमें से किसी भी एक की ओर झुकाव मात्र ही साहित्येतिहास के **अर्थ, स्वरूप** व **संरचना** को प्रभावित करने में सक्षम है। इनके संतुलन और महत्त्व को लेकर विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। साहित्येतिहास के स्वरूप निर्धारण की प्रक्रिया में इन विवादास्पद विषयों पर गहन विमर्ष की आवष्यकता है।

ऐतिहासिक चेतना, आलोचनात्मक विवेक और शोध सामर्थ्य का संतुलन साहित्येतिहास लेखन की कुंजी है। साहितयेतिहास चिंतक आचार्य नलिन विलोचन शर्मा की यह राय सदैव हमारा पथ–निर्देषन करती रहेगी – "इतिहास सम्पूर्ण विस्तार का सर्वेक्षण, अनुषीलन और मूल्यांकन है, शोध, विस्तार के खण्ड खण्ड का उद्‌घाटन और विष्लेषण करता है, और आलोचना पथ चिह्नों पर प्रकाष केन्द्रित करती है। तीनों एक दूसरे के लिए आवष्यक और पूरक होते हुए भी स्वतंत्र महत्त्व के अधिकारी हैं।"

यहाँ यह कहना भी प्रासांगिक होगा कि अधिकांष साहित्येतिहासकार अपने **पूर्वाग्रहों अज्ञानता** और **विपुल साहित्य राषि** के चलते संतुलन स्थापित करने में चूक जाते हैं अर्थात् भटकाव के षिकार होते हैं। यदि समस्त विद्वानों के विचार और सम्मतियों का ईमानदारी, विवेक और श्रम पूर्वक विवेचन विष्लेषण कर एक संतुलित और समाहारी रूपरेखा तेयार कर ली जाये तो वह दिन दूर नहीं होगा जब हिन्दी जगत में आचार्य शुक्ल के साहितयेतिहास के बाद **'सच्चे अर्थों में हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास'** लिखा जा सकेगा।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रस्तावना
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 01
3. रामषंकर शुक्ल 'रसाल' – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 8–11
4. हिन्दी साहित्य, पृ॰ 5

5. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, निवेदन उद्धृत आनंद नारायण शर्मा, पृ॰ 242
6. उद्धृत, हिन्दी साहित्य का इतिहास – सं॰ डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰ 27
7. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ॰ 5–6
8. उद्धृत आनन्द नारायण शर्मा – भारतीय हिन्दी परिषद का अध्यक्षीय भाषण, काव्य और कल्पना, पृ॰ 147,149, पृ॰ 334
9. हिन्दी साहित्य का नया इतिहास, पृ॰ 15
10. इतिहास और साहित्येतिहास, पृ॰ 9
11. हिन्दी साहित्य की सामाजिक भूमिका, प्राक्कथन
12. नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृ॰ 267
13 .रामस्वरूप चतुर्वेदी – साहित्य और संवेदना का विकास, पृ॰ 9
14. रामस्वरूप चतुर्वेदी – साहित्य और संवेदना का विकास, पृ॰ 9
15. रामस्वरूप चतुर्वेदी – साहित्य और संवेदना का विकास, पृ॰ 10
16. रामस्वरूप चतुर्वेदी – साहित्य और संवेदना का विकास, पृ॰ 10
17. रामस्वरुप चतुर्वेदी – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ॰ 9–10
18.आचार्य नलिन विलोचन शर्मा – साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ॰ 34
19. आचार्य नलिन विलोचन शर्मा – साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ॰ 102
20. आचार्य नलिन विलोचन शर्मा – साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ॰ 33
21. आचार्य नलिन विलोचन शर्मा – साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ॰ 01
22. आचार्य नलिन विलोचन शर्मा – साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ॰ 34–35
23. आचार्य नलिन विलोचन शर्मा – साहित्य का इतिहास दर्शन, पृ॰ 119, 275–288
24. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 21
25. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 24
26. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 19
27. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 19
28. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 21
29. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 21
30. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 21
31. आनन्द नारायण शर्मा – हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्षन, पृ॰ 22
32. मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 4
33. मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 25
34. मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, भूमिका, पृ॰ ए
35. मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 6
36. मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 22
37. मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 22 व 23
38. सुमन राजे – साहित्येतिहास : संरचना और स्वरूप,, पृ॰ 12

39. नामवर सिंह – इतिहास और आलोचना, पृ॰ 140–142
40. नामवर सिंह – इतिहास और आलोचना, पृ॰ 142–143
41. नामवर सिंह – इतिहास और आलोचना, पृ॰ 143
42. नामवर सिंह – इतिहास और आलोचना, पृ॰ 152
43. नामवर सिंह संचयिता – सं नंदकिषोर नवल, पृ॰ 382–399
44. नामवर सिंह संचयिता – सं नंदकिषोर नवल, पृ॰ 382
45. नामवर सिंह संचयिता – सं नंदकिषोर नवल, पृ॰ 384
46. नामवर सिंह संचयिता – सं नंदकिषोर नवल, पृ॰ 393
47. नामवर सिंह संचयिता – सं नंदकिषोर नवल, पृ॰ 399
48. साहित्य का इतिहास दर्षन पृ॰ 119